श्रीसद्गुरुदेवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का

मासिक

श्री आनन्दपुर

दिसम्बर १६६५

श्रीसद्गुरुदेवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का

मासिक

आनन्द सन्देश

अधिपति

श्री परमहंस अद्वैत मत पब्लिकेशन सोसायटी
श्री आनन्दपुर

सम्पादकः—महात्मा ध्यान अमरानन्द

दिसम्बर १९६५

वार्षिक शुल्क भारत में		२४–००
	समुद्री डाक द्वारा	हवाई डाक द्वारा
पाकिस्तान	६०–००	१५६–००
(ए. पी. पी. यू.) सिंगापुर जापान आदि देशों के लिए	७२–००	२२८–००
(यू. के.) (यू. एस. ए.) व अन्य देशों के लिए	८४–००	२४०–००

विषय तालिका

आनन्द सन्देश दिसम्बर १९६५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ संख्या

अधिपतिः—श्री परमहंस अद्वैत मत पब्लिकेशन सोसायटी की ओर से प्रकाशक व मुद्रक महात्मा ध्यान अमरानन्द के द्वारा आनन्द प्रिंटिंग प्रैस—श्री आनन्दपुर में छपवा कर आनन्द सन्देश कार्यालय श्री आनन्दपुर, ज़िला गुना (म० प्र०) से प्रकाशित किया।

सम्पादकः—महात्मा ध्यान अमरानन्द

श्रीसद्गुरुदेवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का मासिक

आनन्द सन्देश

श्री आनन्दपुर

दिसम्बर सन् १९९५ ई० सौर पौष सं० २०५२ वि०

वर्ष ४३] [अंक १२

अथ

श्री गुरु-वन्दना

॥ दोहा ॥

श्री परमहंस गुरुदेव के, सुन्दर श्री चरणार ।
अपने हिय बसाय के, पुनि पुनि करूँ जुहार ॥

निखिल गुणों के धाम हैं, जीवनधन अभिराम ।
सतगुरु चरण सरोज में, शत शत कोटि प्रणाम ॥

चरण धूलि धर सीस पर, मंगल मोद मनाऊँ ।
श्री चरणोदक पान कर, बार बार बलि जाऊँ ॥

बख़्श रहे प्रभु रैन दिन, सत्तनाम धन सार ।
श्रद्धा से सुमिरण किये, निश्चय हो निस्तार ।।

आँखों पर संसार के, छाया तम अज्ञान ।
अन्तर्दृष्टि उघाड़ते, देकर अंजन ज्ञान ।।

देखा व्याकुल विश्व को, मोह माया के फंद ।
करुणा धार प्रकटे प्रभो, काटने सबके बंध ।।

निराकार परमात्मा, आये बन साकार ।
जीवों के कल्याण हित, लिया सन्त अवतार ।।

ताते वन्दन मैं करूँ, श्रद्धा भाव समेत ।
चरण शरण में राख कर, पूरण सुख हो देत ।।

सुरत जुड़े गुरु नाम से, जर जाते सब पाप ।
आधि व्याधि नाशे सकल, मिट जाते त्रयताप ।।

श्री परमहंस गुरुदेव की, महिमा अगम अनन्त ।
विधि हरि हर नहीं गा सके, थाके ऋषि मुनि सन्त ।।

कल्पतरु मम सतगुरु, सन्तन के अधिराज ।
जिनके कृपाकटाक्ष से, संवर जात सब काज ।।

क्षमा दया के पुँज हैं, बख़्शिश के अवतार ।
अघ अवगुण नहीं देखते, आवे जो चरणार ।।

मधु मंजुल आसीस दे, करते पातक क्षार ।
महापतित जग जीव को, छिन में लेत उबार ।।

माना मैं अघपुँज हूँ, नख सिख भरा विकार ।
नाम तेरो करुणेश है, राख लेहु चरणार ॥

मम अवगुण देखो नहीं, अपनो विरद संभार ।
दीन दुखी असहाय को, कर दो भव से पार ॥

दासनदास याचै यही, हे मेरे प्राणेश ।
तुम्हरी छवि नयनन बसे, आठों पहर हमेश ॥

इति शुभम्

शुभ सूचना

१–पौष सं० २०५२ वि० की संक्रान्ति १६ दिसम्बर सन् १९९५ ई० शनिवार

२–माघ सं० २०५२ वि० की संक्रान्ति (माघी) १४ जनवरी सन् १९९६ ई० रविवार

३–शुभ जन्म दिवस श्री चतुर्थ पादशाही जी महाराज—२२ जनवरी सन् १९९६ ई० सोमवार

४–वसन्त पंचमी—शुभ जन्म दिवस श्री द्वितीय पादशाही जी महाराज—२४ जनवरी सन् १९९६ ई० बुधवार

श्री परमहंस अमृत कथा

श्री प्रथम पादशाही जी महाराज का अमर जीवन

(गतांक से आगे)

॥ दोहा ॥

श्री परमहंस दयाल के, वन्दौं श्री चरणार ।
जिनकी कृपा से पाइया, नाम अमोलक सार ॥

श्री परमहंस दयाल के, बार बार बलि जाऊँ ।
श्रद्धा और निष्ठा सहित, अपना माथ निवाऊँ ॥

शरण मिली गुरुदेव की, पुण्य पुंज परताप ।
सतगुरु नाम प्रताप से, मिटे सकल अनुताप ॥

महिमा अगम अनन्त है, गौरव अति महान ।
प्रथम परमहंस प्रकट भये, परम पुरुष भगवान ॥

आस तुम्हारे चरण की और न कोई आस ।
कृपा दया तुम्हरी सदा, याचै 'दासनदास'

श्री परमहंस अद्वैत मत के महान् प्रवर्तक, भक्ति-परमार्थ के शाश्वत ज्योतिस्तम्भ, प्रातः स्मरणीय श्री परमहंस दयाल जी श्री श्री १०८ श्री स्वामी अद्वैतानन्द जी महाराज श्री प्रथम पादशाही जी के योगिदुर्लभ श्री चरणारविन्दों में दासानुदास का श्रद्धासहित बार-बार दण्डवत्-प्रणाम है ।

इस प्रसंग के अन्तर्गत आपके श्री मुख प्रवचन निरन्तर दिये जा रहे हैं। यहाँ कुछ और श्री वचन पाठकों के लाभार्थ दिये जा रहे हैं।

एक दिन श्री वचन हुये कि हज़रत फ़रीदुद्दीन अत्तार जब इत्र की दुकान करते थे, उस समय एक फ़कीर एक दिन उनकी दुकान के सामने आकर खड़ा हो गया और कई घण्टे तक खड़ा रहा, परन्तु अत्तार साहिब ने उस फ़कीर की ओर तनिक भी ध्यान न दिया और अपनी दुकान के कार्य में ही व्यस्त रहे। तब फ़कीर ने उनसे कहा कि मियां ! तुम दुकानदारी में ऐसे व्यस्त हो कि मौत का विचार तक नहीं। बताओ, तुम्हारे प्राण कैसे निकलेंगे ?

उस समय उन्होंने झुँझलाकर उत्तर दिया कि मेरे प्राणों के विषय में पूछते हो ! भला तुम्हीं बताओ कि तुम्हारे प्राण कैसे निकलेंगे ?

फ़कीर यह सुनकर दुकान के सामने ही लेट गया और प्राण त्याग दिये। यह देखकर अत्तार साहिब निस्तब्ध रह गए और हृदय में ऐसा वैराग्य उत्पन्न हुआ कि उसी समय सम्पूर्ण सम्बन्धों से सम्बन्ध-विच्छेद करके फ़कीरी ग्रहण कर ली।

एक दिन श्री वचन हुए कि जब नादिरशाह दिल्ली में था तो भारत के बादशाह की ओर से उसकी दावत हुई। सैकड़ों प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन जैसे पूरी, कचौरी, हलुआ, माँस, पुलाव, ज़रदा (एक प्रकार के मीठे चावल), कोरमा, अचार, चटनी, मुरब्बे, साग-भाजी आदि क्या कुछ न था ! सभी कुछ उपलब्ध किया गया अर्थात् भोजन बनवाने में

अत्यन्त शिष्टाचार बरता गया। जब भोजन सब अधिकारियों, सरदारों और सिपाहियों के सम्मुख रख दिया गया तो नादिरशाह ने उठकर एक दृष्टि सब वस्तुओं पर डाली और यह शिष्टाचार देखकर हैरान रह गया। उसने कुछ भिश्तियों को बुलवाकर पूरे भोजन पर पानी डलवाकर नष्ट करा दिया और किसी को भोजन चखने तक न दिया। फिर बादशाह से कहने लगा कि क्या आप मेरे सैनिकों को जीभ के स्वाद में डालकर बरबाद करना चाहते हैं ? यदि इन लोगों को ऐसी वस्तुओं का रस पड़ गया तो फिर इनकी दशा भी आप लोगों के समान आरामतलबी की हो जायेगी और फिर ये लोग युद्ध करने के योग्य न रहेंगे। इसलिए आप तो मेरे सैनिकों को चावल, खुश्क आटा आदि सब सामान कच्चा ही दे दें, ये आप ही पकाकर या भून-भानकर खा लेंगे।

श्री परमहंस दयाल जी ने फ़रमाया कि कहने का तात्पर्य यह कि जब एक देश को जीतने के लिए इन्द्रिय-दमन तथा मातिक रसों के त्याग की इतनी आवश्यकता होती है, तो क्या इस मन को जीतने के लिए, जिसमें सारे संसार के संस्कार भरे पड़े हों, इन्द्रिय-दमन की ओर ध्यान देने की आवश्यकता न होगी ? है और अवश्य है, अपितु सत्य तो यह है कि मन को जीतने के लिये कई गुणा अधिक ध्यान देने और इन्द्रिय-दमन की ज़रूरत है।

एक दिन श्री वचन हुए कि बादशाह अकबर के पीरो-मुर्शिद (गुरुदेव) जब हज के लिए जाने लगे तो आज्ञा की कि हम अकेले जायेंगे। बादशाह ने विनय की कि मेरे पास एक

नौकर है, उसके लिए मैं सिफ़ारिश करता हूँ। उसको यदि साथ ले जायें तो आराम रहेगा।

उन्होंने पूछा कि क्या यह व्यक्ति तुम्हारा आज़माया हुआ है। बादशाह ने उत्तर दिया कि आपकी संगति से मनुष्य बन जायेगा।

वे उस नौकर को साथ ले गये। जब हज से वापस आए तो बादशाह से कहा कि हम तुम्हारे नौकर से बहुत प्रसन्न हैं। उसके साथ होने से हमको बहुत आराम मिला। पूरी यात्रा में हमने जो कुछ उसको करने को कहा, उसने वह कर दिया और सिवा इसके कोई बात उसने न तो हमसे कही और न पूछी। यह बताओ कि यह बात उसमें कैसे पैदा हुई?

बादशाह ने विनय की कि हज़रत! जिस समय यह व्यक्ति मेरे पास नौकर होकर आया, मैंने उसको इस बात का निर्देश दे दिया था कि सिवा उस बात के उत्तर के, जोकि हम पूछें और कोई बात हम से कभी न करना। प्रथम तो उसने यह काम प्राणों के भय से किया, बाद में यह उसकी आदत हो गई। चूँकि मैं उसकी आदत से परिचित था, इसलिए उसको आपके साथ जाने के लिए मनोनीत किया।

यह कथा सुनाकर श्री परमहंस दयाल जी ने फ़रमाया कि मालिक का भजन-सुमिरण भी लोग प्रारम्भ में नरक के भय अथवा स्वर्ग की आशा से करते हैं, परन्तु बाद में धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाते हैं। यदि पूर्ण सद्गुरु मिल जायें तो आशा-निराशा अर्थात् रोचक एवं भयानक विचार मन से दूर हो जाते हैं और जिज्ञासु कर्त्तव्य समझकर मालिक की भक्ति में लग जाता

है। जैसे बालक भी प्रथम तो माता-पिता के भय और अध्यापक की मार के डर से पढ़ना आरम्भ करते हैं, परन्तु जब कुछ पढ़ जाते हैं और ज्ञान का आनन्द प्राप्त होता है तो फिर मारपीट अथवा भय का विचार नहीं रहता, अपितु ज्ञान-प्राप्ति की ऐसी लत पड़ जाती है और लगन बढ़ जाती है कि पुस्तक हाथ से धरना भी बुरा मालूम होता है

एक दिन श्री वचन हुए कि एक राजा बड़ा ही सत्यप्रिय और सन्त-सेवी था। एक बार एक सन्तजी के दर्शन करने पैदल नंगे पांव गया। जब उनके दर्शन करके वापस आ रहा था तो सहसा पाँव में ठोकर लगी और अंगूठा घायल हो गया। बहुत दिनों तक उपचार कराया, परन्तु कुछ लाभ न हुआ। अन्त में अंगूठा काटा गया तब पैर अच्छा हुआ।

जो लोग भौतिकवादी और माया के विचारों के थे, वे राजा की इस सन्त-सेवा की आदत से अप्रसन्न थे। उस समय उनको निंदा करने का अवसर मिला। राजा के मन में भी कुछ विचार पैदा हुआ, परन्तु फिर यह सोचकर चुप हो रहा कि शायद इसमें कुछ भलाई हो।

एक दिन राजा शिकार के लिए गया और साथियों से अलग होकर वन में भटकता फिरता था कि कुछ दैत्याकार डाकुओं ने उसको पकड़ लिया और अपने सरदार के पास ले गए। वह एक यज्ञ कर रहा था और उसकी समाप्ति पर बलिदान के लिए एक मनुष्य की आवश्यकता थी, इसलिए राजा को इस काम के लिए पकड़कर यज्ञशाला में ले गये। पण्डित ने उसके सब अंग देखकर कहा कि यह व्यक्ति बलिदान के योग्य नहीं है,

क्योंकि इसका अंग भंग है अर्थात् पैर का अंगूठा कटा हुआ है। इसलिए उन्होंने राजा को छोड़ दिया। उस समय राजा की समझ में आया कि अंगूठा कटने में यह भेद था, वरना आज प्राण ही चले जाते। उस दिन से वह और भी अधिक समय भजन-सुमिरण और सन्त-सेवा में देने लगा।

एक दिन श्री वचन हुए कि एक महात्मा जी नाव में बैठ कर नदी पार जाते थे। उस नाव में कुछ मनचले व्यक्ति भी बैठे हुए थे। वे महात्मा जी को तंग करने लगे, यहाँ तक कि धौलधप्पा तक की स्थिति को पहुँच गए, परन्तु महात्मा जी ऐसे संयमी थे कि उनकी मारपीट पर भी उफ़ न की और चुपचाप बैठे रहे। जब उनकी दुष्टता सीमा लांघ गई तो प्रभु का प्रकोप टूटा और नाव को डुबोने की आज्ञा हुई। एकाएक ऐसा तूफ़ान आया कि नाव मंझधार में चक्कर खाने लगी। नाविक कूदकर अलग हो गए और सब सवारियां चीखने-चिल्लाने लगीं।

अन्ततः सबने महात्मा जी की शरण ली और हाथ जोड़ कर क्षमा मांगी तथा प्रभु-चरणों में प्रार्थना के लिए विनय की ताकि प्राण बचें। महात्मा जी जब प्रार्थना में निमग्न हुए तो आवाज़ आई कि इन्होंने बहुत दुष्टता की है, इनको अवश्य डुबोया जायेगा।

यह सुनकर महात्मा जी के नेत्रों में जल भर आया और प्रार्थना में कहने लगे कि ऐ मेरे मालिक! क्या जो व्यक्ति तेरे भक्तों के पास आधा घंटा भी बैठे, वह मौत का निशाना बनाये जाने का अधिकारी हो ?

इसपर फिर आकाशवाणी हुई कि इनको कुछ न कुछ दण्ड तो अवश्य मिलना चाहिए ताकि भविष्य के लिए शिक्षा मिले। महात्मा जी ने पुनः विनय की कि यदि दण्ड ही देना है तो यह दो कि इनके पापों को मार डालो और इनके अवगुणों को दूर कर दो ताकि भविष्य में इनसे ऐसा अनुचित कार्य ही न हो।

यह विनय स्वीकृत हुई और नाव में बैठे सभी लोग सज्जन पुरुष बना दिये गए। उस समय उनको महात्मा जी के साधु स्वभाव का पता चला और अत्यन्त अनुनय-विनय करके अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगी।

एक दिन श्री वचन हुए कि हज़रत ख़्वाजा कुतुबुद्दीन व हैदर का एक शिष्य एकदिन शेख़ शहाबुद्दीन की सेवा में उपस्थित हुआ। जब भूख लगी तो मुर्शिद (गुरुदेव) के नगर की ओर मुंह करके कहने लगा कि "कुतुबुद्दीन हैदर शियालिल्लाह!" तो शेख़ शहाबुद्दीन उसकी बात समझ गए और भोजन मँगवाकर खिला दिया। जब वह खा चुका तो कहने लगा कि "अलहमदुलिल्लाह कुतुबुद्दीन हैदर कि आप हमारा प्रत्येक अवस्था में ध्यान रखते हैं।"

शेख़ शहाबुद्दीन के शिष्यों में से एक ने विनय की कि हज़रत! यह अनोखा आदमी है कि खाना तो आपका खाया है और धन्यवाद अपने मुर्शिद को देता है।

शेख़ शहाबुद्दीन ने फ़रमाया कि यदि किसी मनुष्य को शिष्य बनने का ढंग सीखना हो तो इससे सीखे, क्योंकि यह जहाँ कहीं से भी लाभ उठाता है, अपने मुर्शिद (गुरु) की ओर से समझता है।

श्री परमहंस दयाल जी ने फ़रमाया कि इस कथा का भाव यह है कि शिष्य अपने मन को अपने इष्टदेव के प्रेम के सिवा हर चीज़ से खाली कर दे। यदि किसी से कुछ प्राप्त भी हो तो उसको उचित है कि अपने गुरु की ओर से ही समझे।

एक दिन राय साहिब बैरिस्टर मथुरादास जी ने किसी साहब से यह कहा कि जो अजपा जाप श्री महाराज जी के कई चेले (भक्त अमीरचन्द आदि) बताते हैं, वह हम भी बता सकते हैं।

जब राय साहिब श्री महाराज जी के श्री दर्शन को आए तो श्री परमहंस दयाल जी ने पूछा—रायसाहिब! आपके पास जो मुकद्दमा आदि आता है, उसका अर्ज़ी दावा कौन लिखता है और मिसिल कौन तैयार करता है?

उन्होंने उत्तर दिया—महाराज जी! मेरा मुँशी यह सब काम करता है।

श्री परमहंस दयाल जी ने पुनः फ़रमाया—यदि मुँशी यह कहे कि सब काम तो मैं करता हूँ, फिर बैरिस्टर साहिब को इतनी फीस मिलने और न्यायालय में जाने की कौन बड़ाई है? मैं ही न्यायालय में जाकर वकालत और मुकद्दमे की पैरवी क्यों न कर लूँ? तो क्या न्यायालय उसकी बात को उचित ठहरायेगा और क्या वह इस काम को कर सकेगा?

बैरिस्टर साहिब ने उत्तर दिया—महाराज जी! ऐसा कैसे हो सकता है? मुँशी मुँशी है और बैरिस्टर बैरिस्टर ही है।

श्री परमहंस दयाल जी ने फ़रमाया—फिर गुरु और चेले कैसे समान हो सकते हैं ? चेला निस्सन्देह गुरु के संकेत और आदेश से सबको उपदेश करता है, इसका कारण यह है कि गुरु अकेले किस-किसको बतलावें और सिखलावें, परन्तु ऐसा करने से गुरु और चेला समान नहीं हो सकते। परमार्थ के पूरे भेद तो गुरु के सान्निध्य में ही खुलते हैं।

और यह भी मालूम हो कि शिक्षा देना सहज काम है, परन्तु न्यायालय में उत्तर देना टेढ़ी खीर है। जिसने बैरिस्ट्री का प्रमाण पत्र प्राप्त किया हो, वही न्यायालय में मुकद्दमे की पैरवी कर सकता है। इसीप्रकार जिसको गुरु और मालिक के आदेश से 'गुरु' का काम सौंपा गया है, वही इस ज़िम्मेवारी को उठाकर मुक्ति-पथ में पैरवी और सहायता कर सकता है। संसार के न्यायालय में गाल बजा लेना सरल है, परन्तु कुल मालिक के न्यायालय में बिना प्रमाणपत्र वालों का पहुँचना नहीं हो सकता।

एकदिन श्री वचन हुए कि मनुष्य के जीवन का अनुमान दिन, मास, वर्ष पर नहीं, अपितु स्वाँसों की संख्या पर निर्भर है। स्वास्थ्य की स्थिति में २१६०० (इक्कीस हज़ार छः सौ) स्वाँस प्रतिदिन के निर्धारित हैं। उनकी न्यूनता अथवा अधिकता से जीवन-काल में न्यूनता अथवा अधिकता हो सकती है। अतएव जिन कार्यों में स्वाँस अधिक चलें, उनसे परहेज़ करना चाहिये।

स्वाँसों की चाल (गति) इस प्रकार है—बैठत बारह,

चलत अठारह, सोवत पच्चीस और मैथुन साठ। अतएव समाधि लगाने से जिसमें स्वाँस पूर्णतः रुक जाता है अथवा बहुत कम गति से चलता है, जीवन बहुत बढ़ सकता है। इसके अतिरिक्त सुरत-शब्द-योग का अभ्यास करने से आयु बढ़ने के साथ-साथ एक विशेष लाभ यह भी है कि मानसिक शान्ति और आत्मिक सुख भी प्राप्त होता है। किन्तु योग अभ्यास की युक्ति पूर्ण सद्गुरु से सीखकर ही अभ्यास करना चाहिये।

नोटः—जनवरी सन् १६४६ से इस प्रसंग के अन्तर्गत श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री द्वितीय पादशाही जी महाराज का जीवनचरित्र दिया जायेगा।

रूहानी शब्द

१. है अपार तेरी रहमत,
मेरे भाग जगे हैं प्रभु, मिल गई जो तेरी क़ुरबत ।

२. क्या शुभ संयोग बना,
किरपा कर के तूने, लिया अपने जो संग मिला ।

३. तेरी शरण प्रभु जो मिली,
सच पूछो तो ऐ प्रभु, मेरे दिल की कली खिली ।

४. मेरा सूना सा जीवन,
खुशरंग बना है प्रभु, पा के प्यारा दर्शन ।

५. भाग्य क्यों न मनाऊँ मैं,
स्वामी जो तुझ सा मिला, गीत खुशियों के गाऊँ मैं ।

६. निज कृपा बनाये रखना,
हम दासों को ऐ प्रभु, अपने ही साये रखना ।

कल्याण मार्ग

प्रभु–नाम का रसपान करो

(३०३)

"आमतौर पर संसारी मनुष्य मन के धोखे में आकर संसार के रसों में ही सच्चा सुख-आनन्द मानकर उनके पीछे जीवन-पर्यन्त भागता रहता और उनकी प्राप्ति के यत्न में लगा रहता है, परन्तु इन सांसारिक रसों में चूँकि सुख-आनन्द है ही नहीं, इसी लिए उसे कभी भी सच्चे सुख-आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। सच्चा सुख, सच्चा आनन्द प्रभु-नाम में है। जो सांसारिक रसों को छोड़कर नाम-रस का पान करता है, वह सच्चे सुख और सच्चे आनन्द को प्राप्त करके कृतकृत्य हो जाता है।"

व्याख्या:—

सत्पुरुषों के वचन हैं कि:—

सुख कउ मागै सभु को दुखु न मागै कोइ ॥
सुखै कउ दुखु अगला मनमुखि बूझ न होइ ॥

गुरुबाणी

आम संसारी मनुष्यों की हालत को देखकर सत्पुरुष श्री

गुरु नानकदेव जी महाराज फ़रमाते हैं कि सभी मनुष्य सुख की ही चाह करते हैं, दुःख तो कोई भी नहीं चाहता। किन्तु सुख की चाह रखते हुए भी आमतौर पर मनुष्य को दुःख की ही प्राप्ति होती है, परन्तु मनमुख (मन की मति पर चलने वाले) मनुष्य को फिर भी समझ नहीं आती।

सुख और आनन्द तो संसार का प्रत्येक मनुष्य चाहता है, परन्तु भ्रम और धोखे में आकर और संसार के रसों में सुख-आनन्द मानकर वह उनसे अपनी आशा पूरी करना चाहता है। यही कारण है कि वह दिन-रात सांसारिक रसों के पीछे भागता रहता और उनकी प्राप्ति के यत्न में लगा रहता है। किन्तु संसार के रसभोगों में सच्चा सुख-आनन्द हो तब तो उसे मिले। जैसे मृगतृष्णा का जल एक धोखा है, भ्रम है, वहाँ जल का नामो-निशान भी नहीं होता, उसी प्रकार संसार के रसभोगों में मनुष्य को जो सुख-आनन्द भासता है, वह मात्र उसका भ्रम है, अन्यथा उनमें सुख-आनन्द नाम को भी नहीं है। मनुष्य इन रसभोगों में सुख-आनन्द मान बैठा है, यही उसकी भूल है और इस भूल के कारण ही मनुष्य सदा दुःखी, अशान्त और परेशान बना रहता है। सत्पुरुष श्री गुरु नानकदेव जी महाराज के वचन हैं कि:—

जेते रस सरीर के तेते लगहि दुख ॥

गुरुवाणी

अर्थात् शरीर के जितने भी रसों का मनुष्य आस्वादन करता है, उसे उतने ही दुःख लगते हैं।

इसलिए मनुष्य यदि सुख और आनन्द चाहता है तो फिर

उसे संसार के और शरीर के रसभोगों की ओर से अपने चित्त को हटाकर उस रस की ओर लगाना होगा, उस रस का पान करना होगा जिस रस को पीने से उसे सचमुच ही सुख और आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। वह रस है—प्रभु नाम का रस। सन्त तुलसीदास जी अपने कल्याणकारी वचनों द्वारा जीवों को सुशिक्षा देते हुए कथन करते हैं कि:—

॥ दोहा ॥

रे मन सब सों निरस होय, सरस राम से होय ।
भली सिखावन देत है, निसदिन तुलसी तोय ॥

अपने मन के माध्यम से गोस्वामी तुलसीदास जी जीवों को उपदेश करते हैं कि ऐ मन ! मैं तुझे रात-दिन यही भली शिक्षा देता रहता हूँ कि संसार के रसों को नीरस समझकर छोड़ दे और प्रभु-नाम के रस का पान कर ।

मनुष्य स्वयं विचार करे कि संसार के रसों में सुख-आनन्द की कल्पना करके वह जो हर समय इनकी प्राप्ति के यत्न में लगा रहता है तो क्या उसे इनके उपभोग से सुख-आनन्द की प्राप्ति होती है ? उत्तर मिलेगा कि नहीं। यह ठीक है कि मनुष्य को ऐन्द्रिक रसों में क्षणमात्र के लिए सुखानुभूति प्रतीत होती है, परन्तु परिणाम इनका अत्यन्त दुखदाई है। सत्पुरुष श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज का फ़रमान है:—

निमख काम सुआद कारणि कोटि दिनस दुखु पावहि ॥
घरी मुहत रंग माणहि फिरि बहुरि बहुरि पछुतावहि ॥

गुरुवाणी

अर्थः—"मनुष्य क्षण भर के काम-सुख के लिए करोड़ों दिन दुःख-कष्ट सहता है। घड़ी-दो घड़ी मौज करता है, फिर बार-बार पछताता है।"

शराबी व्यक्ति शराब में सुख-आनन्द की कल्पना करके ही शराब पीता है, तभी तो थोड़ी-सी शराब पीने पर वह कहने लगता है कि सुरूर (अर्थात् आनन्द) आ गया। परन्तु उसकी आनन्द की यह अनुभूति क्षणिक ही सिद्ध होती है। शराब पीने के बाद मनुष्य की जो दुर्गति होती है, वह किसी से छिपी हुई नहीं है। मदिरा के नशे में चूर होकर वह अपनी विचार शक्ति खो बैठता है; परिणामस्वरूप अनाप-शनाप बकता, गंदी नालियों में गिरता तथा लोगों की दृष्टि में अपमानित होता है। इसके अतिरिक्त मदिरा के विषाक्त प्रभाव के कारण उसका शरीर शनैः शनैः जर्जर और रोगी बन जाता है जिससे उसे महान दुःख और कष्ट सहने पड़ते हैं।

शराब की तरह ही संसार के सभी रसभोगों का यही परिणाम है। मन के धोखे में आकर मनुष्य इन रसभोगों में सुख-आनन्द की कल्पना करके इनमें लिप्त होता है, परन्तु होता पूर्णतया इसके विपरीत है। सुख-आनन्द देने की अपेक्षा संसार के ये रस-भोग, चाहे वे शारीरिक हों या ऐन्द्रिक, मनुष्य को दुःखी, अशान्त और परेशान करके उसका जीवन नष्ट कर देते हैं। जबकि उनमें दुःख ही दुःख भरा हुआ है, उनमें नाम के लिए भी सुख नहीं है, तो फिर उनके सेवन से सुख-आनन्द की आशा करना ही गलती है। सच्चा सुख और सच्चा आनन्द जब भी मिलेगा प्रभु-नाम का अमृतमय रस पीने से ही मिलेगा।

मनुष्य स्वयं विचार करे कि एक-एक इन्द्रिय-रस के अधीन होकर जबकि भ्रमर, पतंगा, हाथी आदि दुःख-कष्ट उठाते और अपनी दुर्गति कर लेते हैं तो जो मनुष्य पाँचों इन्द्रियों के रसों के अधीन हैं, उनकी क्या दशा होगी ? क्या वे दुःखों, कष्टों, परेशानियों से बच सकते हैं ? कदापि नहीं। सन्त कथन करते हैं कि:—

मातंग मत्स्य मधुकर पतंग सारंग कोटयो निहताः ।
एकैकेन्द्रियवशगाः किं पुनरखिलेन्द्रियासक्ता ॥
रूपं शब्दो रसो गन्धः स्पर्शश्चैते विनाशकाः ॥
एते वशीकृता यैर्वै ते विनष्टाः स्वयं जनाः ॥

सूक्तावलि

अनुवादः—

करी काम आमिष मत्स्य, मृग स्वर रूप पतंग ।
अलि सुगंधि इत्यादि हत, इक इक इन्द्रिय संग ॥

शब्द स्पर्श रस रूप गंध, पांचों कारण नास ।
जे जन पाँचों वश भये, कथा कहै को तास ॥

सारुक्तावली

भावार्थः—"हाथी काम-वासना के कारण, मछली मांस के कारण, हरिण स्वर (गीत) के कारण, पतंगा रूप के कारण और भ्रमर सुगन्धि के कारण अर्थात् ये सब एक-एक इन्द्रिय-रस के वशीभूत होकर अपना सर्वनाश कर लेते हैं।"

"शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध—इन पाँचों में से प्रत्येक रस नाश का कारण है। अतः जो मनुष्य इन पांचों के वश

हैं, उनकी कथा कौन कहे ? उनके नाश में तो कोई संशय ही नहीं है।"

महापुरुष इसीलिए मनुष्य को उपदेश करते हैं कि ऐ मनुष्य! दुःखी और अशान्त करने वाले तथा अधोगति की ओर ले जाने वाले शरीर-इन्द्रियों के रस-भोगों का त्याग करके प्रभु के अमृतमय नाम का रसपान कर, जो अमर जीवन प्रदान करनेवाला और सच्चा सुख-आनन्द देने वाला है। किन्तु नाम का यह अमृतमय रस सन्तों सत्पुरुषों की शरण-संगति में ही पान करने को मिलता है, जैसा कि कथन है:—

अमिउ अमिउ हरि रसु है मीठा
मिलि संत जना मुखि पावै ॥
गुरुबाणी

अर्थः—"प्रभु-नाम का रस अमृत के समान मधुर है, परन्तु सन्त सत्पुरुषों की संगति में ही उसका पान सम्भव है।"

और इस नामरूपी अमृतरस का पान करने से मनुष्य का सारे दुःखों, सारे कष्टों, सारी चिंताओं से छुटकारा हो जाता है और वह सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। सन्तों के वचन हैं कि:—

॥ दोहा ॥

प्रभु नाम अमृत भरा, जो पीवे तृपताय ।
सुखी बसे संसार में, और अमर पद पाय ॥

इसके विपरीत जो प्रभु-नाम का रस पीने की बजाय संसार के रसों का आस्वादन करने में ही लगा रहता है, उसके विषय

में सत्पुरुष श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज फरमाते हैं कि:—

नाम बिसारि करे रस भोग ॥
सुखु सुपनै नही तन महि रोग ॥

गुरुवाणी

अथः—"नाम को भुलाकर जो मनुष्य संसार के रसों का ही उपभोग करता रहता है, उसे स्वप्न में भी सुख की प्राप्ति नहीं होती। इसके अतिरिक्त इन रसों को, भोगने के फलस्वरूप उसके शरीर में रोग लग जाते हैं।"

एक दिन एक भक्त आँख बन्द किये पूजा-आराधना में निमग्न था कि तभी उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि एक बड़े ही भद्दे और मोटे शरीर वाली, काली-कलूटी स्त्री, जिसके लम्बे-लम्बे दाँत और लम्बे-लम्बे नाखून हैं, अपनी लाल-लाल लम्बी जीभ लपलपाती हुई उसके सामने खड़ी है। उसे देखकर भक्त ने निर्भयता से पूछा—"तू कौन है ?"

वह बोली—"मैं संसारी रसभोगों की चाह रूपी डायन हूँ।"

भक्त ने पुनः प्रश्न किया—"तेरा निवास कहाँ है ?"

वह बोली—"मैं उन लोगों के हृदय में निवास करती हूँ जो सदा संसार के रसों की चाहना करते रहते है।"

भक्त ने फिर पूछा—"तेरा काम क्या है ?"

उसने उत्तर दिया—"मैं उन लोगों की इस चाह को और अधिक भड़काती हूँ जिससे कि वे जिस प्रकार से भी हो सके, उन रसों को प्राप्त करने और भोगने में ही लगे रहें और सदा दुःख, कष्ट, क्लेश, कलपना, चिंता आदि से ग्रस्त रहें।"

भक्त ने कहा—"तब तू यहाँ क्या करने आई है ? यहाँ से तुरन्त भाग जा, क्योंकि यहाँ तेरे लिए कोई जगह नहीं है।"

यह सुनकर वह भयानक रूप-रंग वाली स्त्री तुरन्त वहाँ से गायब हो गई।

कुछ ही पल बाद भक्त ने फिर देखा कि एक अत्यन्त सुन्दर रूप-रंग वाली स्त्री, जिसके मुखमंडल पर तेज है और जो मुसकरा रही है, उसके सामने खड़ी है। भक्त ने पूछा—"आप कौन हैं ?"

उसने उत्तर दिया—"मैं सुख, आनन्द और शान्ति की देवी हूँ।"

भक्त ने पूछा—"देवि ! आपका निवास कहाँ है और आप का काम क्या है ?"

उसने कहा—"संसार के सब प्रकार के रसों को विष समझ कर और उन्हें दिल से त्यागकर जो सदा प्रभु-नाम के अमृतमय रस का पान करते रहते हैं, मैं उनके दिल में निवास करती हूँ और उनके जीवन को सदा सुख, आनन्द और शान्ति से भरपूर रखना ही मेरा काम है।"

भक्त ने कहा—"देवि ! तुम्हारा स्वागत है। आओ ! और मेरे हृदय में निवास करो।"

और वह देवी उस भक्त के हृदय में समा गई।

कहने का तात्पर्य यह कि आम संसारी मनुष्य यद्यपि सुख, आनन्द और खुशी की कामना रखकर ही संसार के रसभोगों के पीछे दिन रात मतवाले बने रहते हैं, परन्तु फिर भी सदा दुःखी, अशान्त और परेशान ही रहते हैं; सच्चे सुख-आनन्द की झलक

देखना भी उन्हें नसीब नहीं होता। कारण यह कि इन रसभोगों में सुख, आनन्द और खुशी नाम को भी नहीं है; वह तो प्रभु-नाम में है। और जो गुरुमुख सन्त सत्पुरुषों की शरण-संगति ग्रहण कर प्रभु-नाम के अमृतमय रस का पान करते हैं, वही सच्चे सुख-आनन्द को प्राप्त करते हैं।

सन्त सत्पुरुषों की संगति में जब मनुष्य को नाम के मधुर रस का पान करने को मिलता है और नामरस के पान से जब उसे अलौकिक सुख, अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है, तब फिर संसार के रस उसे नीरस और फीके प्रतीत होने लगते हैं। सत्पुरुष श्री गुरु रामदास जी के वचन हैं किः—

जितने रस अनरस हम देखे ।
सभ तितने फीक फीकाने ॥
हरि का नामु अमृत रस चाखिआ ।
मिलि सतिगुर मीठ रस गाने ॥

गुरुबाणी

अर्थः—"जगत् के जितने भी विभिन्न प्रकार के रस हमने देखे हैं, वे सब फीके और नीरस हैं। सद्गुरु की संगति में हमने आत्मिक जीवन प्रदान करने वाला प्रभु-नाम का रस चखा है। वह रस अत्यन्त मधुर है।"

मनुष्य जब एक बार नाम के अमृतमय रस का आस्वादन कर लेता है, तब वह भूलकर भी संसार के रसों की ओर नहीं देखता। वह तो बस हर समय नाम के रस में ही लीन रहता है। सत्पुरुष श्री गुरु रामदास जी के वचन हैं किः—

जिहवा हरि रसि रही अघाइ ॥
गुरमुखि पीवै सहजि समाइ ॥
हरि रसु जन चाखहु जे भाई ॥
तउ कत अनत सादि लोभाई ॥

गुरुवाणी

अर्थः—"सद्गुरु की संगति में जिस गुरुमुख की जिह्वा प्रभु के नाम-रस से तृप्त रहती है, वह सदा नाम-रस ही पान करता है और आत्मिक स्थिरता में निमग्न रहता है। हे भाई ! जिन्होंने प्रभु-नाम के रस का स्वाद चखा है, उन्हें फिर अन्य रसों के स्वाद लुभा नहीं सकते।"

एक अन्य स्थान पर भी फ़रमाते हैं किः—

हरि हरि नामु अंमृतु हरि मीठा
हरि संतहु चाखि दिखहु ॥
गुरमति हरि रसु मीठा लागा
तिन बिसरे सभि बिख रसहु ॥

गुरुवाणी

अर्थः—"हरि का नाम अमृततुल्य है और अत्यन्त मधुर है, अतः सन्तों की संगति में इसे चखकर देखो। सद्गुरु के उपदेशों पर आचरण करने से प्रभु-नाम का रस मीठा लगता है और जीव को संसार के रस, जो विष के समान हैं, सब बिसर जाते हैं।"

अतएव प्रभु-नाम के मधुर रस का पान करो। इससे तुम्हारा यह जीवन भी सुख, आनन्द और शान्ति से भरपूर हो जायेगा और अमरपद की भी प्राप्ति होगी।

भजन

स्वरः—तुम्हीं राम हो...॥

टेकः—जगे भाग हैं, मेरे सतगुरु,
तेरा जो दरबार मिला ।

१–झूम रहा खुशियों में मनवा,
तुझ सा जो दातार मिला ।

२–कोई चिंता फिकर रही ना,
सुखों का भण्डार मिला ।

३–तेरी अनुकम्पा से सतगुरु,
तेरा अनुपम प्यार मिला ।

४–जब से तेरा 'दास' बना हूँ,
दिल को चैन-ो-क़रार मिला ।

भगवान का बिरद

"ओह ! आज तो महाराज के पास जाने में बहुत अधिक देर हो गई। महाराज तो इस समय बड़े रोष में होंगे। न जाने इस देरी के कारण क्या दण्ड दें ?"

यह सोचकर भक्त सेन ने तेज़ी से पग आगे बढ़ाये। महाराज वीरसिंह के स्वभाव से वह भलीभाँति परिचित थे। वैसे तो महाराज वीरसिंह बहुत ही हंसमुख और नरम दिल के थे, परन्तु जब कोई कर्मचारी कर्त्तव्यपालन में लापरवाही करता था तो फिर वही महाराज वीरसिंह सख़्त दिल के हो जाते थे और कर्त्तव्यपालन में लापरवाही बरतने के फलस्वरूप उसे दण्ड देने से भी नहीं हिचकिचाते थे। आज भक्त सेन से भी ऐसा ही अपराध हुआ था। आज वह समय पर नहीं पहुँच सके थे, उन्हें आज सेवा पर पहुँचने में काफी देर हो गई थी।

यह लगभग छः सौ वर्ष पहले की बात है। मध्यभारत के बघेलखण्ड में स्थित एक राज्य था—बान्धवगढ़। वीरसिंह इसी बान्धवगढ़ के राजा थे—बड़े ही प्रजापालक, सत्यवादी और ईश्वरभक्त। महाराजा वीरसिंह के शासनकाल में बान्धवगढ़ ने खूब प्रगति की, इस कारण दूर-दूर तक महाराज वीरसिंह की प्रसिद्धि फैली हुई थी। भक्त सेन इन्हीं महाराज वीरसिंह की सेवा के लिए राजमहल में जाया करते थे। भक्त सेन नाई का

काम करते थे। यह उनका खानदानी पेशा था और कई पुश्तों से यह परिवार राजघराने के लोगों की ही सेवा करता आ रहा था। भक्त सेन भी केवल महाराज वीरसिंह की ही सेवा किया करते थे, शेष समय वह भगवान के भजन-सुमिरण, सत्संग और साधु-सेवा में व्यतीत करते थे। ब्रह्ममुहूर्त्त में उठकर और भजन-पूजन से निवृत्त होकर वह सुबह-सवेरे ही राजमहल में पहुँच जाया करते थे। राजा के बाल बनाना, उनके शरीर की मालिश करना तथा उन्हें स्नान आदि करवाना—यह कार्य उन्हीं के ज़िम्मे था। अपने इस कार्य को पूरा करके वह घर वापस चले जाया करते थे।

भक्त सेन तथा उनका परिवार—सभी भगवान के सच्चे प्रेमी भक्त थे। प्रभु के चरणों में उनका अटल विश्वास, अटूट श्रद्धा तथा अचल निष्ठा थी। भक्त सेन बड़े ही विनम्र और सन्तोषी स्वभाव के थे। महाराज वीरसिंह की सेवा के फलस्वरूप उन्हें जो धन प्राप्त होता, उसी में सन्तोषपूर्वक परिवार का पालन-पोषण करते हुए वह अपना शेष समय भजन-पूजन और सत्संग में लगाकर अपने जीवन की घड़ियाँ सफल करते थे। वास्तव में सफल भी वही घड़ियां हैं जो सत्संगति में भगवान् के सुमिरण-भजन में बीतती हैं जैसा कि सत्पुरुषों का कथन हैः—

॥ दोहा ॥

कबीर संगत साध की, साहिब आवै याद ।
लेखे में सोई घड़ी, बाकी दिन बरबाद ॥

परमसन्त श्री कबीर साहिब

भगवान का विरद

"ओह ! आज तो महाराज के पास जाने में बहुत अधिक देर हो गई। महाराज तो इस समय बड़े रोष में होंगे। न जाने इस देरी के कारण क्या दण्ड दें ?"

यह सोचकर भक्त सेन ने तेज़ी से पग आगे बढ़ाये। महाराज वीरसिंह के स्वभाव से वह भलीभाँति परिचित थे। वैसे तो महाराज वीरसिंह बहुत ही हंसमुख और नरम दिल के थे, परन्तु जब कोई कर्मचारी कर्त्तव्यपालन में लापरवाही करता था तो फिर वही महाराज वीरसिंह सख़्त दिल के हो जाते थे और कर्त्तव्यपालन में लापरवाही बरतने के फलस्वरूप उसे दण्ड देने से भी नहीं हिचकिचाते थे। आज भक्त सेन से भी ऐसा ही अपराध हुआ था। आज वह समय पर नहीं पहुँच सके थे, उन्हें आज सेवा पर पहुँचने में काफ़ी देर हो गई थी।

यह लगभग छः सौ वर्ष पहले की बात है। मध्यभारत के बघेलखण्ड में स्थित एक राज्य था—बान्धवगढ़। वीरसिंह इसी बान्धवगढ़ के राजा थे—बड़े ही प्रजापालक, सत्यवादी और ईश्वरभक्त। महाराजा वीरसिंह के शासनकाल में बान्धवगढ़ ने खूब प्रगति की, इस कारण दूर-दूर तक महाराज वीरसिंह की प्रसिद्धि फैली हुई थी। भक्त सेन इन्हीं महाराज वीरसिंह की सेवा के लिए राजमहल में जाया करते थे। भक्त सेन नाई का

काम करते थे। यह उनका खानदानी पेशा था और कई पुश्तों से यह परिवार राजघराने के लोगों की ही सेवा करता आ रहा था। भक्त सेन भी केवल महाराज वीरसिंह की ही सेवा किया करते थे, शेष समय वह भगवान के भजन-सुमिरण, सत्संग और साधु-सेवा में व्यतीत करते थे। ब्रह्ममुहूर्त्त में उठकर और भजन-पूजन से निवृत्त होकर वह सुबह-सबेरे ही राजमहल में पहुँच जाया करते थे। राजा के बाल बनाना, उनके शरीर की मालिश करना तथा उन्हें स्नान आदि करवाना—यह कार्य उन्हीं के ज़िम्मे था। अपने इस कार्य को पूरा करके वह घर वापस चले जाया करते थे।

भक्त सेन तथा उनका परिवार—सभी भगवान के सच्चे प्रेमी भक्त थे। प्रभु के चरणों में उनका अटल विश्वास, अटूट श्रद्धा तथा अचल निष्ठा थी। भक्त सेन बड़े ही विनम्र और सन्तोषी स्वभाव के थे। महाराज वीरसिंह की सेवा के फलस्वरूप उन्हें जो धन प्राप्त होता, उसी में सन्तोषपूर्वक परिवार का पालन-पोषण करते हुए वह अपना शेष समय भजन-पूजन और सत्संग में लगाकर अपने जीवन की घड़ियाँ सफल करते थे। वास्तव में सफल भी वही घड़ियां हैं जो सत्संगति में भगवान् के सुमिरण-भजन में बीतती हैं जैसा कि सत्पुरुषों का कथन है:—

॥ दोहा ॥

कबीर संगत साध की, साहिब आवै याद।
लेखे में सोई घड़ी, बाकी दिन बरबाद॥

परमसन्त श्री कबीर साहिब

इसीलिए सन्त सत्पुरुषों की संगति तथा उनकी सेवा को भक्त सेन अत्यधिक महत्त्व देते थे और मनुष्य जीवन की सफलता के लिए इसे अत्यावश्यक, अपितु अनिवार्य समझते थे। और वास्तव में देखा जाए तो यह है भी शत प्रतिशत सही। सन्तों सत्पुरुषों की शुभ संगति, उनकी सेवा और उनके दर्शन की महिमा कोई कहाँ तक वर्णन करे। सभी सच्छास्त्र, सद्ग्रन्थ और सन्तों की वाणियां सत्संग की महिमा से भरी पड़ी हैं। सत्संगति में ऐसी अलौकिक शक्ति है कि वह जीव की काया पलट कर देती है और उसे कागवृत्ति से हंसवृत्ति का बना देती है। जो मनुष्य आम संसारियों की संगति में पहले हर समय शरीर-इन्द्रियों के भोगों में आसक्त होकर तरह-तरह के पापकर्मों में लिप्त रहता है, वही सत्संगति के प्रताप से उच्चकोटि का परमार्थी जीव बन जाता है। ऐसी महान शक्ति है सत्संगति में। सत्संगति की महिमा का बखान करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कथन करते हैं कि:—

॥ चौपाई ॥

मज्जन फल पेखिअ ततकाला ।
काक होहिं पिक बकउ मराला ॥
सुनि आचरज करै जनि कोई ।
सतसंगति महिमा नहिं गोई ॥
बालमीक नारद घटजोनी ।
निज निज मुखनि कही निज होनी ॥
जलचर थलचर नभचर नाना ।
जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥

मति कीरति गति भूति भलाई ।
जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ ।
लोकहुँ वेद न आन उपाऊ ॥
बिनु सतसंग विवेक न होई ।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसंगत मुद मंगल मूला ।
सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई ।
पारस परस कुधात सुहाई ॥

श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड

अर्थः—"सत्संगति रूपी तीर्थराज में स्नान का फल तत्काल देखने में आता है कि कौए की वृत्ति के मनुष्य कोयल वृत्ति के और बगुले की वृत्ति के मनुष्य हंसवृत्ति के बन जाते हैं। यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे, क्योंकि सत्संगति की महिमा कोई छिपी हुई नहीं है। वाल्मीकि जी, नारद जी और अगस्त्य जी ने अपने-अपने मुख से अपनी होनी (अर्थात् जीवन के वृत्तान्त) के विषय में बतलाया है कि किस प्रकार वे इस उच्च पदवी को प्राप्त हुये।"

"जल में रहनेवाले, जमीन पर चलनेवाले और आकाश में विचरनेवाले नाना प्रकार के जड़-चेतन जितने जीव इस जगत में हैं, उनमें से जिसने, जिस समय, जहाँ कहीं भी, जिस किसी यत्न से बुद्धि, कीर्ति, सद्गति, विभूति (ऐश्वर्य) और भलाई पाई है, सो सब सत्संग का ही प्रभाव समझना चाहिये। वेदों में और लोक में इनकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है।"

"सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और प्रभु-कृपा के बिना सत्संग की प्राप्ति नहीं होती। सत्संगति आनन्द एवं कल्याण की मूल है। सत्संग की सिद्धि (प्राप्ति) ही फल है, अन्य सब साधन तो फूल हैं। सत्संगति पाकर दुष्ट भी सुधर जाते हैं जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सुहावना हो जाता है अर्थात् सुन्दर सोना बन जाता है।"

सत्संगति अर्थात् सन्त सत्पुरुषों की संगति की महिमा करते हुए मुन्शी सूरज नारायण 'मेहर' लिखते हैं कि:—

कुरबे-नेकां में है अगर तेरा गुज़र,
हो जायेगा इन्सां से फरिश्ता यकसर।
जिस तरह कि पारस को ज़रा मिस करके,
आहन ऐ 'मेहर' दम में हो जाए ज़र ॥

अर्थः—"ऐ मनुष्य! यदि सन्त सत्पुरुषों की संगति में तेरी बैठक हो जाए तो फिर निश्चय जान कि तू मनुष्य से तत्काल फरिश्ता (शुभ गुणों वाला) बन जायेगा जिस प्रकार कि पारस से छू जाने पर लोहा पल भर में ही सोना बन जाता है।"

सत्संगति में जाने से मनुष्य कैसे फरिशता (शुभ गुणों वाला) बन जाता है, इसका कारण बतलाते हुए मुंशी सूरज नारायण 'मेहर' लिखते हैं कि:—

ख़्याल होते हैं सत्संग में भलाई के,
ख़्याल होते हैं ज़ुहद और पारसाई के।
ख़्याल हैं यहाँ पाकी के और सफ़ाई के,
येह वो जगह है कि पर कटते हैं बुराई के।

इन्हीं ख़्यालों के रंगों से है रंगा जाता,
जो भूला भटका कोई इस जगह है आता ।।

अर्थ—"सन्त सत्पुरुषों की संगति ग्रहण करने पर भलाई के, साधुता के, इन्द्रिय-निग्रह के तथा पवित्रता एवं निर्मलता के विचार दिल के अन्दर पैदा होते हैं। सत्संगति ही वह जगह है जहां बुराई के पंख कट जाते हैं। यदि कोई भूले से भी सत्संगति में आ जाता है तो शुभ विचारों के रंग से रंगा जाता है।"

यह सत्संगति की महिमा और उसका प्रताप है, इसीलिए भक्त सेन सत्संगति को अत्यधिक महत्त्व देते थे और जहां कहीं और जब कभी सन्त सत्पुरुषों के दर्शन और उनकी सेवा का सुअवसर मिलता तो इस अवसर को अपना सौभाग्य समझकर इससे भरपूर लाभ उठाते थे।

यह सत्संगति का ही प्रताप था कि प्रभु-भक्ति और प्रभु-प्रेम का गहरा रंग उन पर चढ़ गया था जो दिन प्रतिदिन और भी अधिक गहरा होता जा रहा था। जैसे पुष्प के खिलने पर उसकी सुगन्धि चारों ओर फैल जाती है, वैसे ही भक्त सेन की भक्ति की चर्चा भी चारों ओर फैली हुई थी, इसीलिए नगर के लोग उन्हें 'भक्त जी' कहकर बुलाया करते थे। सत्पुरुष श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज अपनी पवित्र बाणी में फ़रमाते हैं कि:—

सैन नाई बुतकारीआ ओहु घरि घरि सुनिआ ।।
हिरदे वसिआ पारब्रह्मु भगता महि गनिआ ।।

गुरुबाणी

अर्थः—"घर-घर ऐसा सुना जाता था कि सेन नाई बाल संवारने का काम करता है, परन्तु जब उसके हृदय में परब्रह्म परमेश्वर बस गए तो फिर उसकी गिनती भी उच्चकोटि के भक्तों में हो गई।"

किन्तु जहाँ भजन-सुमिरण, सत्संग और साधु-सेवा उनका नित्यप्रति का नियम था और इसको वह सर्वोपरि समझते थे, वहाँ वह अपने सांसारिक तथा पारिवारिक कर्त्तव्यों का भी पूरा पूरा ध्यान रखते थे और इन कर्त्तव्यकर्मों को बड़ी ही लगन और दिलचस्पी से पूरा करते थे। महाराज वीरसिंह की सेवा भी कर्त्तव्य समझकर वह बड़ी ही तत्परता और लगन से करते थे, यही कारण था कि महाराज उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे। इन कर्त्तव्यकर्मों को पूरा करने में वह कभी भी आलस्य, प्रमाद अथवा टालमटोल नहीं करते थे। इस प्रकार उनका लौकिक जीवन भी सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था और अपना पारलौकिक जीवन भी वह सुधार और संवार रहे थे।

किन्तु एक दिन......एक दिन वह महाराज वीरसिंह की सेवा में नित्यप्रति की तरह समय पर नहीं पहुँच सके थे। कारण इसका यह था कि उस दिन जैसे ही राजमहल जाने के लिए वह घर से निकले, उनकी दृष्टि एक सन्त मण्डली पर पड़ी जो तीर्थयात्रा करते हुए उस नगर में आ पहुँची थी और उनका नाम सुनकर उनके घर की तरफ ही आ रही थी। भक्त सेन ने सन्त मण्डली को अत्यन्त श्रद्धा से दण्डवत्-वन्दना की, फिर विनय करके उन्हें घर लाए, उनके चरण पखारे, चरणामृत लिया और फिर उनके जलपान के प्रबन्ध में लग गए। तत्पश्चात् सत्संग

और कीर्तन आदि हुआ। कीर्तन आदि के उपरान्त जब सन्त मण्डली विदा हुई, तब उन्हें महाराज वीरसिंह की सेवा का ध्यान आया और वह तेज़ी से राजमहल की ओर बढ़े। मार्ग में जाते हुए उनके मन में ये विचार उठ रहे थे—

"आज महाराज के पास जाने में बहुत अधिक देर हो गई। आज तो महाराज बहुत ही अधिक रुष्ट होंगे। वह आज दण्ड दिये बिना कदापि न छोड़ेंगे।"

तभी उनके मस्तिष्क में दूसरे प्रकार के विचार उभरे—"उँह! रुष्ट होते हैं तो होते रहें। रुष्ट होकर अधिक से अधिक वह क्या करेंगे? कैदखाने में डलवा देंगे या फांसी चढ़वा देंगे। परन्तु उनके रोष अथवा दण्ड के भय से सत्संगति का अलभ्य लाभ तो नहीं छोड़ा जा सकता।"

इन्हीं विचारों में खोये हुए वह तेज़ी से राजपथ पर चले जा रहे थे। उधर राजमहल में क्या हुआ? प्रातः होने पर महाराज वीरसिंह नींद से जागे। सेवकों ने नित्यप्रति की भाँति उनकी मालिश तथा स्नान आदि का सारा प्रबन्ध कर दिया। समय हो गया, परन्तु भक्त सेन नहीं आए। महाराज उनकी प्रतीक्षा करने लगे। कुछ देर तक जब भक्त जी न आए तो अवसर पाकर ईर्ष्यालु लोगों ने महाराज वीरसिंह के कान भरने शुरु कर दिये। भगवान् ने जब देखा कि उनका प्रेमी भक्त तो घर पर साधु-सेवा और भजन-कीर्तन में मस्त है, महाराज वीरसिंह की सेवा का इस समय उसे ध्यान तक नहीं है और इधर ईर्ष्यालु लोगों ने महाराज के कान भरने शुरु कर

दिये हैं तो उन्होंने भक्त को महाराजा वीरसिंह के रोष से बचाने के लिए तुरन्त भक्त सेन का रूप और वेष बनाया और राजमहल में जा पहुँचे। अपने भक्तों की लाज रखना और उनकी हर संकट से रक्षा करना, यह तो भगवान् का बिरद है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज भक्त अर्जुन के प्रति फ़रमाते हैं कि:—

॥ शेअर ॥

याद करते हैं मुझे जो लोग बा सिद्‌क-ो-सफ़ा।
उनकी इम्दाद-ो-हिफ़ाज़त फ़र्ज़ अवलीं है मेरा॥
मख़्ज़ने-असरार ६/२२

अर्थः—"जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर का श्रद्धा और निष्कामभावना से निरन्तर सुमिरण करते रहते हैं, उनकी सहायता करना और उनकी रक्षा करना मेरा प्रथम कर्त्तव्य है।"

अस्तु, लीलाविहारी भगवान् भक्त सेन का रूप धर कर राजमहल में जा पहुँचे। उनके कन्धे पर उस्तरा, कैंची, दर्पण आदि की छोटी-सी पेटी वैसे ही लटक रही थी जैसे भक्त जी के कन्धे पर लटकी रहती थी। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने विलम्ब के लिए महाराज से क्षमा मांगी और अपने काम में जुट गए। उन्होंने महाराज की शेव बनाई, शरीर की मालिश की और फिर कुनकुने पानी से स्नान करवाया। महाराज जब वस्त्र पहन चुके तो फिर उनके बाल संवारे। जितनी देर वह महाराज वीरसिंह की परिचर्या में लगे रहे, महाराज बार-बार उनकी तरफ़ देखते रहे। इसके दो मुख्य कारण थे:—

(१) आज भक्त जी (जो वस्तुतः भगवान् थे) के मुख पर अनोखा तेज था जो राजा ने पहले कभी नहीं देखा था।

(२) मालिश करते समय भगवान् के करकमलों के स्पर्श से महाराज वीरसिंह को आज दिव्य सुख की, अलौकिक आनन्द की अनुभूति हो रही थी। आज अपने शरीर में वह अनोखी स्फूर्ति अनुभव कर रहे थे।

भक्त सेन के वेश में भगवान् महाराज वीरसिंह की सेवा कर के चले गये। आज महाराज भक्त जी की सेवा से बहुत ही प्रसन्न थे और अपनी इस प्रसन्नता का प्रकटन उन्होंने वहाँ उपस्थित सभी लोगों से किया।

उधर भक्त सेन सन्त मण्डली के विदा होने के उपरान्त राजमहल पहुँचे। उन्हें देखकर द्वार पर खड़े राजसैनिक ने कहा—"भक्त जी ! कुछ भूल गये क्या, जो वापस आ गए हैं ?"

"वापस ! अरे भैया, मैं तो अभी-अभी घर से चला आ रहा हूँ। आज मुझे यहाँ आने में बड़ा विलम्ब हो गया है।" भक्त सेन का उत्तर था।

"वाह, भक्तजी वाह ! तबीयत तो ठीक है। अभी-अभी तो आप महाराज की सेवा करके यहां से गये हैं और कहते हैं कि अभी-अभी घर से चला आ रहा हूँ। भला, यह क्या बात हुई ?" राजसैनिक ने कहा।

"भैया ! मेरे साथ मज़ाक़ मत करो। पहले ही काफी देर हो चुकी है और इस देरी के कारण महाराज पहले ही काफी रुष्ट होंगे। न जाने इस देरी के कारण क्या दण्ड दें ?" भक्त सेन

बोले।

"भक्तजी ! कैसी बातें कर रहे हो ? महाराज तो आपकी आज की सेवा से अत्यन्त प्रसन्न हैं और अपनी इस प्रसन्नता की उन्होंने सबके सामने चर्चा भी की है।"

भक्त सेन ने सोचा कि आज मामला अवश्य गड़बड़ है, तभी तो यह राजसैनिक मेरी हंसी उड़ा रहा है। जब मैं यहाँ आया ही नहीं तो महाराज भला प्रसन्न क्या होंगे ? वह तो अवश्य ही क्रोध में भरे बैठे होंगे। यही सोचते-सोचते वह राजा के पास जा पहुँचे और उन्हें प्रणाम कर देरी के लिए क्षमा माँगने लगे। महाराज वीरसिंह हैरान होते हुए बोले—"भक्तजी ! आज यह कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो ? हमारी सेवा करके अभी-अभी तो तुम यहाँ से गए हो, फिर देर कैसी और क्षमा कैसी ?"

भक्त सेन ने कहा—"महाराज ! मैं तो आज आपकी सेवा में उपस्थित ही नहीं हो सका, फिर आपकी सेवा मैंने भला कैसे की ? महाराज ! आप अवश्य ही मुझ गरीब के साथ हँसी कर रहे हैं।"

"नहीं भक्त जी ! हम तुम्हारे साथ हँसी नहीं कर रहे, हम बिल्कुल सच कह रहे हैं कि तुम हमारी सेवा करके कुछ देर पहले ही यहाँ से गए हो। तुम्हें वापस आते देखकर हम तो यह समझे थे कि तुम कुछ इनाम लेने के लिए यहाँ वापस आए हो, क्योंकि आज की तुम्हारी सेवा से हमें जो सुख मिला, उसका हम वर्णन नहीं कर सकते। आज तो हमें ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो हमारे शरीर के सभी रोग दूर हो गए हैं और हमें नवजीवन प्राप्त

हो गया है"—महाराज वीरसिंह ने कहा।

अब हैरान होने की बारी भक्त सेन की थी। वह मन ही मन सोचने लगे कि राजसैनिक भी यह कह रहा था कि महाराज की सेवा करके अभी-अभी मैं यहां से गया हूँ और अब महाराज वीरसिंह स्वयं भी यही कह रहे हैं, परन्तु मैं तो यहां आया नहीं, तो क्या...तो क्या! भक्त जी का माथा ठनका। तो क्या भगवान् स्वयं मेरा रूप धर कर यहां पधारे। बड़े उतावलेपन से उन्होंने महाराज वीरसिंह से पूछा—"महाराज! क्या आप सच कह रहे हैं? क्या मैं आपकी सेवा पहले कर गया हूँ? कहीं ऐसा तो नहीं कि किसी और व्यक्ति ने आज आपकी सेवा की हो?"

"भोले भक्त! आज यह तुम कैसी अनोखी बातें कर रहे हो? तुम्हारे सिवा कौन यह कार्य कर सकता था? यह कार्य तो तुम्हारे ही ज़िम्मे है और तुम्हीं नित्यप्रति यह कार्य करते हो। हाँ! आज तुम्हें कुछ विलम्ब अवश्य हो गया था और तुम जल्दी-जल्दी पग बढ़ाते हुए यहाँ आए थे। हाँ! एक बात और याद आई। उस समय तुम्हारे चेहरे पर कुछ अनोखा तेज था और हाँ! तुम्हारा मालिश करने का ढंग भी आज कुछ अलग था। परन्तु सच कहूँ भक्त जी! तुम्हारी सेवा से जो सुख आज हमें मिला, उस सुख का वर्णन हम किसी तरह भी नहीं कर सकते।" महाराज वीरसिंह का उत्तर था।

अब तो भक्त सेन को निश्चय हो गया कि यह सब मेरे भगवान की ही लीला है। उन्होंने महाराज वीरसिंह से कहा—"महाराज! मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं आज आपकी

सेवा में उपस्थित नहीं हो सका।"

"क्या ? तुम हमारी सेवा में उपस्थित नहीं हो सके, यह तुम सौगन्ध खाकर कह रहे हो। तब फिर वह बहुरुपिया कौन था ? तुम्हारे जैसी ही शक्ल-सूरत, तुम्हारे जैसी ही चाल-ढाल और तुम्हारे जैसी ही बोल-चाल तो थी उसकी !" महाराज की आँखों से आश्चर्य स्पष्ट प्रकट हो रहा था।

भक्त सेन ने कहा—"महाराज ! वह बहुरुपिया मेरे भगवान् के सिवा और कौन हो सकता है ? महाराज ! आप धन्य हैं जिन्हें भगवान् के दर्शन और स्पर्श का आज सौभाग्य प्राप्त हुआ।"

यह कहते-कहते उन्हें रोमांच हो आया, वह प्रेम-विह्वल हो गए और उनका दिल भर आया। रोते हुए वह भगवान् के चरणों में प्रार्थना करने लगे—"हे मेरे प्रभो ! यह आपने क्या किया ? मुझ अधम के लिए आज आपने नाई का वेश बनाया और इतना कष्ट उठाया ? मेरे प्रभो ! सचमुच ही आप भक्त-वत्सल एवं शरणागत प्रतिपाल हैं।" उनके नेत्रों से अश्रुओं की झड़ी लग गई और गला रुन्ध गया।

अब महाराज वीरसिंह भी असली बात जान चुके थे कि आज भक्त सेन के वेश में जिसने उनकी मालिश की, वह अन्य कोई नहीं, स्वयं सर्वेश्वर, जगदाधार भगवान् थे। यह जानकर वह अपने पलंग से उठे और भक्त सेन के चरणों पर गिरते हुए बोले—"भक्त जी ! मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ, क्योंकि आपकी कृपा से मुझे आज भगवान् के सान्निध्य एवं दर्शन का

सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरा जीवन आज धन्य हो गया। काश! मैं भगवान को पहचान पाता तो क्या मैं उन्हें ऐसा काम करने देता ?" यह कहते हुए वह भी अश्रुपात करने लगे।

प्रेमावेश कुछ कम होने पर भक्त सेन ने उन्हें उठाया और अपने सीने से लगा लिया।

उस दिन के पश्चात् महाराज वीरसिंह भक्त सेन को अपना गुरु मानने लगे। भक्त सेन ने भी उस दिन से स्वयं को पूर्णतया भगवान् के समर्पित कर दिया और हर समय भगवान् के भजन-सुमिरण में निमग्न रहने लगे।

इस प्रकार भगवान की भक्ति के प्रताप से वह संसार में सदा-सर्वदा के लिए अमर हो गये।

उपरोक्त कथा से यह बात पूर्णतया प्रमाणित हो जाती है कि भगवान भक्तवत्सल हैं, शरणागत प्रतिपाल हैं। जो उनके शरणागत होकर भजन-सुमिरण और सत्संग में अपना समय सफल करते हैं और भगवान में पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास रखते हैं, भगवान हर तरह से उनकी देखभाल और रक्षा करते हैं, यह भगवान का बिरद है। इस विषय में सत्पुरुष श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज के वचन हैं कि:—

अउखी घड़ी न देखण देई अपना बिरदु समाले ॥
हाथ देइ राखै अपने कउ सासि सासि प्रतिपाले ॥ १ ॥
प्रभ सिउ लागि रहिओ मेरा चीतु ॥
आदि अंति प्रभु सदा सहाई धंनु हमारा मीतु ॥ रहाउ ॥

मनि बिलास भए साहिब के अचरज देखि बडाई ॥
हरि सिमरि सिमरि आनद करि नानक प्रभि पूरन पैज रखाई॥ २॥

गुरुवाणी

अर्थः—"प्रभु अपने सेवक भक्त को कोई दुखद समय नहीं देखने देता। वह अपना बिरद हमेशा संभालता है। प्रभु सहारा देकर अपने सेवक की रक्षा करता है और श्वास-श्वास में उसकी देखभाल करता है। मेरा चित्त उस प्रभु के साथ सदा जुड़ा रहता है जो आदि से अन्त तक सहायक होता है। हमारा वह सच्चा मीत धन्य है। मालिक प्रभु के आश्चर्योत्पादक कौतुक देखकर, उसकी महानता देखकर सेवक के मन में भी खुशियाँ बनी रहती हैं। श्री गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि ऐ भाई! तुम भी परमात्मा का नाम-स्मरण करके आत्मिक आनन्द प्राप्त करो। प्रभु हर प्रकार से लाज रखनेवाले हैं।"

कविता

हे जगतारण करुणा-सागर,
हे शरणागत के प्रतिपाल ।
दीनबन्धु ! इस दीन सेवक की,
कीजिये करुणा कर संभाल ॥
घिरा हुआ हूँ भव संकट में,
मोह माया के झंझावात ।
जहाँ भँवर हैं गहरे गहरे,
लहरों का भारी उत्पात ॥
जर्जर नौका झेल न सकती,
उत्ताल तरंगों की यह चाल ।
दीनबन्धु ! इस दीन सेवक की,
कीजिये करुणा कर संभाल ॥

जाल भयानक डाले हुए है,
भव में महा भयावह क्रोध ।
ग्रस लेने को मुझे है तत्पर,
मेरी रूह का शत्रु लोभ ॥
भड़क रही तृष्णा की ज्वाला,
कहीं द्वेष रहा खूब मचल ।

रोक रखा मारग कहीं मेरा,
ममता की गहरी दलदल ॥
नाथ ! बचाओ इनसे मुझको,
एक दृष्टि करुणा की डाल ।
दीनबन्धु ! इस दीन सेवक की,
कीजिये करुणा कर संभाल ॥

जब जब किसी ने व्याकुल मन से,
तुझे पुकारा हे प्रभुवर ।
बिरद संभाल के तब तब तुम ने,
हाथ रखा उसके सिर पर ॥
महा कीर्ति युगों युगों से,
जग में है तेरी विख्यात ।
मदद करो मेरी भी हे प्रभु,
बिरद संभारो अपना नाथ ॥
शीघ्र करो अब देर करो न,
पड़ा हुआ विपदा के गाल ।
दीनबन्धु ! इस दीन सेवक की,
कीजिये करुणा कर संभाल ॥

आकर शीघ्र हरो दुःख मेरा,
भव-भय-भंजन दुःखहर्ता ।
नाथ ! न अवगुण दोष निहारो,
मेरे जीवन के भर्ता ॥

कृपा करो इतनी सेवक पर,
करूँ तेरा निसदिन सुमिरण ।
मगन रहे भक्ति में तेरी,
जाए न विषयों में मन ॥
ऐसी श्रेष्ठ बना दो बुद्धि,
फँसे कभी न मोह के जाल ।
दीनबन्धु ! इस दीन सेवक की,
कीजिये करुणा कर संभाल ॥

'दास' ने मन की बागडोर,
नाथ ! तेरे हाथों में दे दी ।
तव चरणों में हे मेरे स्वामी,
विकट व्यथा अपनी है कह दी ॥
तुम पे सौंप दिया सेवक ने,
अपने जीवन का अब भार ।
लाज रखो मेरी हे भगवन,
अपने नाम का बिरद संभार ॥
ऐसी कृपा करो सेवक पे,
कट जाए माया का जाल ।
दीनबन्धु ! इस दीन सेवक की,
कीजिये करुणा कर संभाल ॥

सद्उपदेश

१. सच्चे भक्त के ये विशेष लक्षण हैं:—

(क) निष्कामभाव से सेवा-भक्ति करना
(ख) स्तुति-निन्दा तथा मान-अपमान में सम रहना
(ग) सब प्राणियों में ईश्वर को व्यापक देखना

२. पापों का प्रायश्चित करते समय इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:—

(क) किये हुए पापों के प्रति पश्चात्ताप
(ख) पुनः पाप न करने का प्रण
(ग) आत्मशुद्धि

३. मनुष्य के कल्याण के तीन सोपान हैं:—

(क) संसार से उपरति
(ख) सत्पुरुषों की चरण-शरण ग्रहण करना
(ग) मन की निर्मलता

४. मानसिक रोगों से छुटकारा प्राप्त करने के लिए इन तीन

औषधियों का सेवन मनुष्य के लिए अत्यावश्यक है:—

(क) सत्संग
(ख) नाम का सुमिरण
(ग) सद्ग्रन्थों का अध्ययन

५. चन्दन की लकड़ी में एक विशेष प्रकार की सुगन्धि होती है जिससे आकर्षित होकर सर्प चन्दन के वृक्षों के साथ लिपटे रहते हैं, परन्तु चन्दन का वृक्ष न तो उनके विष को ग्रहण करता है और न ही अपनी विशेषता त्यागता है। गुरुमुख एवं भक्तजन भी इसी प्रकार संसार में रहते हुए अपने सद्गुणों से सबको आकर्षित करते हैं, परन्तु दुर्जनों के प्रभाव से अप्रभावित रहते हैं।

६. यदि कोई विषधर (सर्प) को पकड़ने का यत्न करे तो उसका परिणाम क्या होगा? यही कि सर्प उसे डस लेगा। किन्तु कोई व्यक्ति यदि सर्प को वश में करने का मंत्र जानता हो तो फिर वह सांप को सुगमतापूर्वक पकड़ सकता और उसके विष के प्रभाव से बचा रह सकता है। इसी प्रकार जिसके पास गुरु-शब्द रूपी महामंत्र है, उसके ऊपर मायारूपी नागिन का विष तनिक भी प्रभाव नहीं डालता।

७. दाद एक ऐसा रोग है जिसको खुजलाने में पहले तो दाद के रोगी को सुख प्रतीत होता है, परन्तु बाद में उसे असहनीय कष्ट भोगना पड़ता है। संसार के विषयभोग तथा इन्द्रियजन्य सुख भी प्रारम्भ में तो कुछ समय के लिए सुखदायक

प्रतीत होते हैं, परन्तु उनके परिणामस्वरूप जीव को जन्मों-जन्म तक दारुण दुःख-कष्ट भोगने पड़ते हैं।

८. यदि दर्पण पर धूल जमी हो तो उसमें अपना प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं पड़ता, परन्तु धूल साफ होते ही दर्पण में अपना रूप स्पष्ट दिखाई देने लगता है। इसी प्रकार जिसके अन्तःकरण पर सांसारिक कामनाओं तथा वासनाओं की धूल जमी हो, उसे आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता। इसलिए मनुष्य को चाहिये कि नाम-सुमिरण द्वारा अपने अन्तःकरण को शुद्ध, पवित्र एवं निर्मल करे।

९. स्पर्श मणि (पारस मणि) में यह स्वाभाविक गुण होता है कि यदि लोहा उसके साथ छू जाए तो वह तुरन्त सोना बन जाता है, परन्तु मध्य में यदि सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु भी हो तो पारस के साथ सीधा सम्पर्क न होने से चाहे वर्षों तक साथ पड़ा रहे, वह लोहे का लोहा ही रहता है। सत्पुरुषों महापुरुषों में भी यह विशेष गुण होता है कि उनके संसर्ग में आने पर मनुष्य की काया पलट हो जाती है और वह जीव से ब्रह्म बन जाता है। किन्तु मनुष्य के अन्दर यदि तनिक-सा भी अहंकार एवं अहंता का तत्त्व विद्यमान है तो फिर वह मनुष्य भी अहंता-अहंकार के पर्दे के कारण महापुरुषों की सुसंगति में रहने पर भी कोरा का कोरा ही रह जाता है।

१०. गोताखोर मोतियों की खोज में समुद्र में गहराई तक जाते हैं। वे मूल्यवान् मोती तो रख लेते हैं, परन्तु सीप को व्यर्थ समझकर फेंक देते हैं। इसी प्रकार गुरुमुख एवं भक्तजन

भी संसार में रहते हुए प्रभु की भक्ति रूपी चिंतामणि को तो हृदय में ग्रहण कर लेते हैं और सांसारिक कामनाओं को त्याग देते हैं।

११. यदि मन कुसंगति में पड़ जाता है तो उसका प्रभाव मनुष्य के आचार-विचार तथा वाणी पर प्रकट होने लगता है; फलस्वरूप वह अपनी दुर्गति कर लेता है। इसके विपरीत यदि मन को अच्छी संगति में—सन्तों सत्पुरुषों की संगति में लगा दिया जाए तो वह ईश्वर-चिंतन में रमण करने लगता है। फिर उसे सिवाय ईश्वर-चर्चा के अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता। ईश्वर के निरन्तर चिंतन से मनुष्य को परमपद की प्राप्ति होती है।

१२. एक किसान ऊख के खेत में दिन भर पानी भरता था, परन्तु सायंकाल जब देखता, तब उसमें पानी की एक बूंद भी दिखलाई नहीं पड़ती थी। सब पानी अनेकों छिद्रों द्वारा बह जाता था। ठीक इसी प्रकार जो जिज्ञासु अपने मन में कीर्ति, सम्पत्ति, पदवी तथा संसार के सुखभोगों आदि की कामनायें रखता हुआ ईश्वर की भक्ति करता है, वह परमार्थ के मार्ग में कुछ भी उन्नति नहीं कर सकता। उसकी भक्ति का सारा फल कामनाओं रूपी छिद्रों द्वारा बह जाता है। इसलिए निष्काम भावना से भक्ति करो।

१३. जिस प्रकार हंस पानी को छोड़ देता है और दूध को ग्रहण कर लेता है अर्थात् असार को छोड़कर सार को ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार भक्त एवं गुरुमुखजन सार वस्तु—परमेश्वर की भक्ति को ग्रहण कर लेते हैं और भोगों को असार समझकर

त्याग देते हैं।

१४. जिस घर के लोग सावधान रहते हैं, उस घर में चोर नहीं घुस सकते। ठीक इसी प्रकार जिज्ञासु यदि हमेशा सावधान और सतर्क रहेगा तो फिर कुप्रवृत्तियों तथा बुरे विचारों को हृदय में घुसने का अवसर नहीं मिल पायेगा।

१५. सूर्य तो सबको समानरूप से प्रकाश प्रदान करता है। धनी हो या निर्धन, वृद्ध हो या बालक, पुरुष हो या स्त्री, विद्वान् हो या अपढ़—सूर्य किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। जो भी उसका प्रकाश प्राप्त करना चाहे, कर सकता है; आवश्यकता है कमरे का द्वार खुला रखने की। यदि कोई कमरे के किवाड़ ही बन्द कर ले तो इसमें सूर्य का क्या दोष ? ठीक इसी प्रकार भगवान् की कृपा भी अनवरत हो रही है और सब पर समानरूप से हो रही है। आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य श्रद्धारूपी किवाड़ खुले रखे। श्रद्धारूपी किवाड़ बन्द कर लेने पर मनुष्य भगवान् की कृपा से वंचित रह जाता है।

१६. मनुष्य नित्यप्रति देखता है कि लोग मृत्यु के मुख में जा रहे हैं और यह भी देखता है कि मृत्यु का कोई समय निश्चित नहीं है, फिर भी वह मृत्यु की ओर से नेत्र बन्द किये रहता है और भजन-सुमिरण करने की अपेक्षा व्यर्थ के धन्धों में अपना सारा समय नष्ट करता रहता है, यह कितने खेद का विषय है।

१७. मनुष्य प्रतिदिन देखता है कि संसार के धन-पदार्थ बे-वफ़ा हैं; कोई भी पदार्थ अन्त में मनुष्य के साथ नहीं जाता, फिर भी वह उन्हें संचित करने में हर समय लगा रहता है और उन्हें

'मेरा-मेरा' कहता रहता है, यह कितने खेद का विषय है।

१८. दीपक की लौ की चमक-दमक पर लट्टू होकर पतंगे को अपना सर्वनाश करते देखकर संसारी मनुष्य उसकी अज्ञानता पर तो हँसता है, परन्तु माया और माया के पदार्थों की चमक-दमक पर लट्टू होकर वह जो अपना सर्वनाश कर रहा है, इस बात का उसे पता ही नहीं, यह कितने खेद का विषय है।

भजन

स्वरः—तेरे चेहरे से.........॥

टेकः—कर तू सतगुरु की, निष्काम भक्ति,
जन्म न वृथा गँवा, जन्म न वृथा गँवा ।
भव तरने की नहीं और युक्ति,
जन्म न वृथा गँवा, जन्म न वृथा गँवा ॥

१. हुआ अपने काम से, क्यों बेख़बर है,
भला क्यों शरीर पे, तेरी नज़र है ।
तुझे मालिक की, याद क्यों बिसरी,
जन्म न वृथा गँवा, जन्म न वृथा गँवा ॥

२. देख अपने कर्मों पे, नज़र तू डार के,
रख मन हमेशा, अपना तू मार के ।
त्याग मनमति, धार गुरु-मति,
जन्म न वृथा गँवा, जन्म न वृथा गँवा ॥

३. मिला है तुझे जो, स्वाँस खज़ाना,

अन्त है उस का, लेखा चुकाना ।
अजपा जाप में, रख सदा सुरति,
जन्म न वृथा गँवा, जन्म न वृथा गँवा ॥

४. ले सच्चा सौदा, सन्तों की हाट से,
झोली भरेंगे दासा, रूहानी दात से ।
भव तरने में न, फिर देर लगती,
जन्म न वृथा गँवा, जन्म न वृथा गँवा ॥

श्री अमर वाणी

जीवन का उद्देश्य

महापुरुषों का कथन हैः—

॥ दोहा ॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगा। ।
कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाय ॥

श्री कबीर साहिब

इस दुनिया में हर एक चीज़ छोटी–बड़ी चाहे जड़ है चाहे चेतन—हर एक चीज़ की अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार क़द्र-ो-क़ीमत (मूल्य एवं महत्त्व) है। एक छोटे—से सिक्के से ले कर लाल और जवाहर तक तथा जीव-जन्तुओं में चींटी से लेकर हाथी तक—जड़ अथवा चेतन, जो कुछ भी इस दुनिया में दृष्टिगोचर हो रहा है, हर एक का अलग-अलग मूल्य एवं महत्त्व है। और हर चीज़ किसी न किसी विशेष उद्देश्य के लिए है। निष्प्रयोजन एवं निरुद्देश्य कोई भी चीज़ नहीं। इन्हीं चीज़ों में एक मानुष देह भी है जिसको शास्त्रकारों ने बहुत बड़ी विशेषता और ऊँचा दर्जा दिया है।

इस क़दर उत्तम, दुर्लभ और अमूल्य मनुष्य-शरीर, जिसकी इतनी महिमा और बड़ाई की गई है, उसी के लिये महापुरुष फ़रमाते हैं कि ये चीज़ तेरे हाथों से जा रही है। चूँकि यह तन अत्यन्त मूल्यवान् और बहुत दुर्लभ है; न जाने कितनी कोशिशों से, कितने यत्न से और कितनी लम्बी प्रतीक्षा के बाद यह मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है, यह जो अमूल्य बस्तु मालिक ने बख्शी है, वह अनमोल जन्म तेरे हाथों से निकला जा रहा है। इसे कुछ ठौर ठिकाने लगाया जाए अर्थात् इसका पूरा-पूरा लाभ प्राप्त किया जाए। ऐसा न हो कि लाखों की चीज़ कौड़ियों के मोल चली जाए। जो चीज़ जिस कीमत की होती है, उससे उतना ही लाभ उठाना चाहिये।

मिसाल के तौर पर यदि एक लाल की कीमत बहुत अधिक हो, किसी ना समझ के हाथ लग जाए और वह उसे सब्ज़ी की दुकान पर ले जाए, वहाँ से उसके बदले थोड़ी-सी सब्ज़ी ले आए और सब्ज़ी बेचने वाला उसका मूल्य एवं महत्त्व न जानकर उस लाल से सब्ज़ी तोलनेवाले बाट का काम लेता रहे तो क्या उस लाल की सही कीमत पड़ी ? नहीं, यह तो उसकी सही कीमत और सही इस्तेमाल न हुआ। यदि उसकी सही कीमत मालूम करनी हो तो उसे जौहरी के पास ले जाए जो उसकी क़दर और कीमत जानता है। वहाँ उसकी लाखों की कीमत पड़ेगी।

इसी तरह मनुष्य शरीर तो हीरे-लाल-जवाहर से भी बढ़कर मूल्यवान् है। इससे यदि सही लाभ प्राप्त करना है तो महापुरुष फ़रमाते हैं कि सन्तों की सेवा कर और नाम की कमाई कर,

तभी इस जीवन का वास्तविक अर्थों में मोल पड़ेगा, इसलिए महापुरुष उपदेश देते हैं कि तुझे यह चीज़ अत्यन्त सौभाग्य से प्राप्त हुई है, ऐ मनुष्य ! इसकी पूरी-पूरी कदर तो कर और पूरी-पूरी कीमत तो डाल, और इससे लाभवाला सौदा तो कर।

विचार करना है कि वह लाभ वाला सौदा कौनसा है ? संसार की ओर यदि दृष्टि डाली जाए तो जो सौदा आम संसारी कर रहे हैं और जो कमाई वे कर रहे हैं, वे तो लाल को कौड़ियों के भाव गँवा रहे हैं।

॥ दोहा ॥

सब जग बणिजै खार खलि, हीरा कोइ न लेइ ।
हीरा परखे जौहरी, जो मांगे सो देइ ॥

सन्त दादूदयाल जी

अर्थः—"सब दुनिया तो खार और खलि अर्थात् निम्न कोटि की और साधारण मूल्य की वस्तुओं का व्यापार करती है, हीरे का ग्राहक कोई भी नहीं है। हीरों का व्यापार करनेवाला तो कोई बिरला जौहरी ही होता है जो हीरे का पारखू है। उसे हीरे की कीमत मालूम है, इसलिए बेचनेवाला जो भी दाम मांगे, वह खुशी से देने को तैयार रहता है।"

आम संसार की ओर दृष्टि डाली जाए तो पता चलता है कि आम संसार साधारण मूल्य की वस्तुओं अर्थात् शरीर की सुख-सुविधाओं तथा इन्द्रियों के रसभोगों का ही व्यापार कर रहा है, भक्तिरूपी हीरे का व्यापार करनेवाला कोई बिरला

गुरुमुख ही होता है जिसे कि वास्तविकता की परख और पहचान है। कारण क्या ? कारण यह कि न तो संसारियों को स्वयं वास्तविकता की परख है और न ही वे वास्तविकता की परख-पहचान करनेवालों की संगत करते हैं। यह तो गुरुमुखों के बड़े उत्तम भाग्य हैं कि उन्हें सत्पुरुषों की संगत का सुअवसर प्राप्त हुआ है और इस संगत-सोहबत से सच्चाई की परख प्राप्त हुई और भक्ति के विचार पैदा हो गए। यह समझ सत्पुरुषों की संगत से ही मिलती है कि मानुष-जन्म का कितना मूल्य एवं महत्त्व है। किसी की बाहरी सूरत और लिबास देखने से उसके मूल्य एवं महत्त्व का पता नहीं लग सकता, केवल मनुष्य के विचारों से ही उसके मूल्य एवं महत्त्व का पता चलता है। और विचार हमेशा सत्संग में आकर ही पवित्र-निर्मल बनते हैं। सत्पुरुषों की कृपा से नाम की बख़्शिश होती है। गुरुमुख नाम की कमाई करते हैं, सतगुरु दरबार की सेवा करते हैं और तब इस जन्म की कीमत पड़ती है। सत्संगति में आने से स्वाभाविक ही सत्संग का रंग निश्चितरूप से ही चढ़ता है। जैसी संगत वैसी रंगत। अगर संसारियों की संगत होगी तो वही रंग मन पर चढ़ेगा। माया के असरात और संस्कार ताकतवर होंगे और माया के प्रभुत्व में आकर मनुष्य उसके असरात से दुःखी और परेशान होगा। कलपना और क्लेश में सदा ग्रस्त रहेगा। कारण क्या ? कि माया की तासीर (अर्थात् प्रभाव) यही है। संसारियों की संगत में मन को रचाने से यही प्रभाव प्रकट होता है।

दूसरी तरफ़ गुरुमुखजन, जो सौभाग्य से सत्पुरुषों की

संगत में आ जाते हैं, उनका कायाकल्प हो जाता है। उनके विचार शुद्ध, निर्मल और पवित्र हो जाते हैं, तभी मनुष्य-जन्म के मूल्य एवं महत्त्व का ठीक-ठीक पता चलता है। जहाँ माया और माया के पदार्थों की संगत में दिनरात दुःख, कलपना, अशान्ति और क्लेश उठा रहा था, वहाँ महापुरुषों की शरण-संगत में आ जाने से मन को अपने आप ही शान्ति प्राप्त हो जाती है।

अब यह विचार करना है कि यह जो मनुष्य-जन्म का सुअवसर प्राप्त हुआ है, यह किसलिए मिला है ? संसार में मनुष्य किस कारण आया है ? इस बात का अर्थात् जीवन के वास्तविक उद्देश्य का पता लगाना है और पता लग जाने पर अमली कमाई करके इस जन्म की सही-सही कदर-ो-कीमत डालनी है। आम लोगों को समय की कदर इसलिए नहीं कि उन्हें यह मालूम ही नहीं कि जीवन है किस उद्देश्य के लिए ?

महापुरुष चितावनी देते हैं कि यह मनुष्य चोला विषय-विकारों में जीवन बरबाद करने के लिए नहीं मिला; संसार के भोगपदार्थों में गँवाने के लिए नहीं मिला। पहले ही अनन्त योनियों में भटकते रहने के उपरान्त और संसार के कष्ट-क्लेश भोगने के बाद बड़ी कठिनाई से यह जन्म मिला है। इसलिए इस जन्म में मालिक की भक्ति करके अपना कल्याण कर ले; दुःखों और मुसीबतों से छुटकारा प्राप्त कर ले और जन्म-मरण से आज़ाद होकर हमेशा के लिए सुखी हो जा। सत्पुरुषों का कथन है:—

मई परापति मानुख देहुरीआ ॥
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ॥
अवरि काज तेरै कितै न काम ॥
मिलु साध संगति भजु केवल नाम ॥

गुरुवाणी

यह जन्म विशेष रूप से मालिक से मिलने के लिए प्राप्त हुआ है और यही मालिक से मिलने की बारी है। अन्य योनियों में यह कार्य नहीं हो सकता कि भक्ति करके मालिक से मिलाप किया जा सके। इस जन्म में ही यह कार्य हो सकता है। फिर इस जन्म में महापुरुषों ने यह नुक्ता बता दिया कि जन्म-मरण के चक्कर से किस तरह मुक्त होना है और परम पद की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? किस युक्ति से बिछड़ी हुई आत्मा मालिक से मिल सकती है ? वह तरीका यही है कि—

मिलु साध संगति भजु केवल नाम

अर्थात् यदि सब बन्धनों से आज़ाद और काल चक्कर से मुक्त होना चाहता है और मोक्षपद अथवा परमपद की प्राप्ति चाहता है तो सत्पुरुषों की संगत में नाम की कमाई कर।

महापुरुषों के वचन और उनकी वाणियां जीव को सही मार्ग पर लगाती हैं। आम दुनिया की बातें और कथा-कहानियाँ जीव को सच्ची शान्ति नहीं दे सकतीं, परन्तु सत्पुरुषों के वचन शान्ति का मार्ग दिखानेवाले हैं। जो उनकी बाणी पर, उनके वचन पर अमल करेगा, वह अमरपद को प्राप्त कर लेगा।

अतएव जीव यदि वास्तविक अर्थों में सुख और शान्ति का अभिलाषी है और जीवन की कदर करना चाहता है तो महापुरुषों के वचनों पर आचरण करे। भक्तिमार्ग के जो नियम और साधन समझाये गए हैं, उन का नियमपूर्वक परिपालन करने से निश्चय ही उसे सुख-शान्ति प्राप्त होगी।

संसार में रहते हुए और संसार के काम-धन्धे करते हुए जीव को इन नियमों का नित्यनियम से परिपालन करना है और सत्पुरुषों के वचनों के मार्गदर्शन में चलना है। इससे संसार के काम भी न रुकेंगे और भक्तिमार्ग में भी बाधा न पड़ेगी। वे काम भी चलते रहें और भक्ति का सिलसिला भी चलता रहे।

मन में माया के जो विचार और संस्कार भरे पड़े हैं, उन्हें दिल से निकालना है और उनके बदले भक्ति के संस्कारों को बसाना है। मनुष्य भले ही संसार में रहे और संसार के काम-काज करे, कामकाज करने की मना नहीं है, परन्तु चित्त में मालिक का नाम और भक्ति को बसा ले। केवल सुरत का रुख मालिक की ओर हो तो फिर वह अपने मकसद में कामयाब है। इस बात का हमेशा ध्यान रहे कि जिस उद्देश्य के लिए यह शरीर मिला है, वह पूरा हो रहा है या नहीं। इस विचार को दिल में लेकर हमेशा काम करे; जिससे मानुष जन्म की कदर बने और यह जीवन सफल हो। जैसे कि पहले कहा गया है कि—

कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाय

यदि साथ निभानेवाली और जीवन को सफल बनानेवाली कोई चीज़ है तो वह केवल नाम की कमाई है, सत्पुरुषों के

दरबार की निष्काम सेवा है। यही कार्य करना ही जीवन का वास्तविक उद्देश्य है।

बस ! जिस उद्देश्य के लिए मनुष्य संसार में आया है, उसे पूरा करना है, अन्यथा यदि यह समय हाथ से निकल गया तो फिर यह अवसर बार-बार हाथ में आने का नहीं। इस बात का निश्चय भी तो नहीं कि ऐसा अवसर दोबारा मिलेगा और तब मनुष्य लाभ उठा सकेगा। इसलिये महापुरुष बार-बार चिताते हैं कि यह मानुष जन्म अमानत के तौर पर मिला है, यह अपना नहीं, बल्कि बेगाना है; इससे जहां तक हो सके लाभ उठा ले।

॥ दोहा ॥

लालदास उठ भजन कर, आलस ऊँघ निवार।
रच्छ बेगाना कारज अपना, दिन सो लेहु संवार॥

सन्त लालदास जी

अर्थः—"सन्त लालदास जी का कथन है कि यह मनुष्य शरीर तो बेगाना औज़ार है जो थोड़े समय के लिए अमानत के रूप में मिला है, फिर वापस ले लिया जायेगा। इस नाशवन्त और अस्थायी जीवन से आत्मा की उन्नति का जितना काम संवर सकता है, संवार लो। जब तक और जितने दिन यह बेगाना औज़ार अपने पास है, आलस्य एवं प्रमाद त्याग कर अपने कल्याण का काम कर लो।"

यह शरीर है तो नाशवान्, क्षणभंगुर और अस्थायी, परन्तु यही मोक्ष प्राप्ति का साधन भी है। इसे पाकर भी यदि

अपना काम न बनाया तो फिर पछताना पड़ेगा।

॥ चौपाई ॥

साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक संवारा॥

॥ दोहा ॥

सो परत्र दुख पावई, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाय॥

श्री रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड

अर्थः—"यह मनुष्य शरीर सब साधनों का घर और मोक्ष का द्वारा है। इसे प्राप्त करके भी जिसने परलोक संवारने का यत्न नहीं किया, वह इस दुनिया में भी और परलोक में भी दुःखी रहता है और बाद में सिर धुन-धुन कर पछताता है। जब काम का समय हाथ से निकल गया, तब बाद में समय पर, भाग्य पर और ईश्वर पर झूठा दोष लगाता है अर्थात् समय नहीं मिला, भाग्य ने साथ नहीं दिया अथवा ईश्वर की इच्छा नहीं थी, इसलिए मैं कुछ न कर सका, अन्यथा करना तो चाहता था इत्यादि।"

किन्तु ईश्वर के दरबार में न्याय होता है। वहाँ इस प्रकार के बहाने की सुनवाई कदापि न होगी कि मुझे समय नहीं मिला या ईश्वर की कृपा नहीं हुई या मेरे प्रारब्ध में नहीं था। इसलिए यही अवसर और यही समय अपना काम बनाने का है। इसी समय में भक्ति, मोक्ष और परमपद की प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा अन्य जन्मों में यह कार्य न हो सकेगा। अन्य योनियां

केवल भोक्ता हैं, जबकि मानुष भोक्ता और कर्ता दोनों है। सब तरह की शक्तियां इसे प्राप्त हैं, शेष काम इसका अपना है यानी पुरुषार्थ करना। यह जिस तरफ भी झुकेगा और पुरुषार्थ करेगा, प्रकृति की शक्तियां भी इसकी सहायक होंगी। यदि बुराई की ओर झुक गया तो भी मदद मिलेगी, परन्तु बुरे काम का बुरा परिणाम होगा। इससे वह नहीं बच सकेगा। दूसरी ओर यदि भक्ति और नाम की कमाई में दिल लगाये और पुरुषार्थ करे तो प्रकृति की शक्तियां उधर भी मदद देंगी।

अतएव निर्णय मनुष्य के अपने हाथ में है और जिस प्रकार की कमाई करना चाहे, यह उसके अधिकार में है। इसलिए अपने लाभ और हानि के बारे में सोचकर काम करे। यदि सोच-विचार कर काम करेगा तो लाभ ही लाभ है।

यह मानकर कि महापुरुषों की वाणियां और उनके वचन सत् हैं, जोकि वास्तव में सत् हैं भी, यदि उनपर आचरण करके अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यत्न करेगा और विश्वास के साथ महापुरुषों के वचनों को पालना करेगा तो कोई कारण नहीं कि मनुष्य अपने जीवन का कल्याण न करे और अपने उद्देश्य में सफल न हो।

❀ इति शुभम्र भवतु ❀

आवश्यक सूचना

१. मासिक पत्रिका आनन्द सन्देश हिन्दी, सिन्धी, उर्दू और स्प्रिचुअल ब्लिस इंगलिश के सभी पाठकों को सूचित किया जाता है कि काग़ज़ की महंगाई के कारण २४ रुपये के स्थान पर ३६ रुपये वार्षिक चन्दा अप्रैल १९९६ से किया गया है, इसलिए अप्रैल १९९६ से मार्च १९९७ का वार्षिक चन्दा ३६ रुपये भेजें।

२. १०० रुपये से कम राशि के लिए केवल मनीआर्डर आनन्द सन्देश कार्यालय के नाम से ही भेजें, ड्राफ्ट आदि न भेजें।

३. चैक स्वीकार नहीं किये जायेंगे।

४. जिन पाठकों का चन्दा समाप्त है वह ३१ जनवरी १९९६ तक वार्षिक चन्दा ३६ रुपये भेज देवें ताकि उनको अप्रैल १९९६ का विषेशांक प्राप्त हो सके।

५. पुराने ग्राहक अपना चिट नम्बर अवश्य लिखा करें।

६. नये ग्राहक यह अवश्य लिखा करें कि हम नये ग्राहक हैं।

प्रबन्धक

आनन्द सन्देश कार्यालय

DECEMBER 1995 Regd. No. MP/GUNA/5
R. No. 13072/57 Licence No. 1

भक्ति, प्रेम, परमार्थ, वैराग्य तथा शान्ति
का सन्देश वाहक

मासिक आनन्द--सन्देश

पढ़िये और अपनी आत्मिक प्यास बुझाईये

(१) यह मासिक पत्र श्री आनन्दपुर में तीन भाषाओं हिन्दी, उर्दू तथा सिन्धी में प्रकाशित होता है। इसके अतिरिक्त 'SPIRITUAL BLISS' नाम से अंग्रेज़ी में भी मासिक पत्र छपता है।

(२) आनन्द सन्देश, पाठकों को प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहली तारीख को भेज दिया जाता है। २० तारीख तक अंक न मिलने पर अपने डाकखाने से पता करें, तत्पश्चात् कार्यालय को सूचित करें।

(३) आर्डर देते समय जिस भाषा में तथा जिस मास के अंक की आवश्यकता हो स्पष्ट लिखें।

(४) पत्र-व्यवहार करते समय अपने चिट नम्बर का हवाला देना आवश्यक है।

(५) पता-परिवर्तन की सूचना २० तारीख तक कार्यालय को अवश्य भेज दें, जिससे कि समय पर कार्यवाही की जा सके।

पता:- आनन्द सन्देश कार्यालय
पो० श्री आनन्दपुर ज़िला गुना (म० प्र०)

पिव ६७३-१३८